विविधरूपा शिक्षार्थी और एकरूपी पाठ्यक्रम

❑ अन्वेषी समूह

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के पाठ्यक्रम अनुभाग ने जनवरी, 2000 में 'विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठयचर्या की रूपरेखा' शीर्षक से एक बहस दस्तावेज जारी किया। इस दस्तावेज की प्रस्तावना में शिक्षा में रुचि रखने वाले सभी वर्गों व व्यक्तियों को दस्तावेज पर अपने सुझाव तथा टिप्पणियां देने को आमंत्रित किया गया है ताकि विद्यालयी शिक्षा पर राष्ट्रीय बहस हो सके । प्रस्तुत आलेख वसन्त दुग्गीराला, अदिति मुखर्जी, रेखा पप्पू और जेकब थारू ने मिलकर तैयार किया है जो हैदराबाद के अन्वेषी रिसर्च सेन्टर फोर वीमेन्स स्टडीज से संबंद्ध हैं । यह समूह आन्ध्रप्रदेश के चुने हुए राजकीय विद्यालयों में पाठ्यक्रम संचरण संबधी परियोजना पर कार्य कर रहा है। इस आलेख में उठाये गये मुद्दे इस प्रकार हैं - शिक्षार्थी संबंधी अवधारणाएं, शिक्षा के माध्यम संबंधी सवाल, मूल्यांकन के आधार, विशेष आवश्यकताओं वाले शिक्षार्थियों के लिए पाठ्यक्रम तथा वे संदर्भ जिनमें यह दस्तावेज प्रस्तुत किया गया है। यह आलेख 'हिन्दू' (5 सितम्बर 2000) से लिया है जिसका अनुवाद हेतु भारद्वाज ने किया है।

विविध प्रकार के शिक्षार्थियों के लिए एक रूपीय पाठ्यक्रम

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के परिचर्चा दस्तावेज में एक महत्वपूर्ण घोषणा है कि शिक्षार्थी की कोई स्थिर अवधारणा स्वीकार्य नहीं है' तथा 'बालकोंके चिन्तनपरक विकास पर सामाजिक प्रभाव गहरा असर छोड़ते हैं'। यह दस्तावेज इस बिन्दु पर बल देता है कि शिक्षा का ढांचा इस प्रकार नियोजित होना चाहिए कि वह विकासशील सामाजिक ओर सांस्कृतिक परिवेश में विद्यार्थी की व्यक्तिगत जटिल आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके जिससे सभी प्रकार की असमानताएं दूर हो सकें ?

अत: 'पाठयचर्या ऐसी होनी चाहिए कि वह सभी में अन्तर्निहित समानता प्रति विशेष जागरूकता पैदा करे ताकि सामाजिक परिवेश और जन्म के संयोग के माध्यम से प्राप्त पूर्वग्रहों और मनोग्रंथियों का उन्मूलन कर सके। पाठयचर्या और उसके संचालन में प्रथम पीढी के विद्यार्थियों, शारीरिक, मानसिक और दृष्टि से विकलांग विद्यार्थियों और समाज के सुविधाहीन वर्गों में आने वाले विद्यार्थियों को विशेष आवश्यकताओं की और ध्यान देना होगा।

यह किसी से छिपा नहीं है कि शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न पिछड़े समूह के बच्चों का स्थान बहुत धूमिल स्थिति में है किन्तु प्रस्तुत दस्तावेज की मूल प्रेरणा ही शिक्षा द्वारा एक सुदृढ़ सांस्कृतिक संकल्पना को साकार करना है।

यद्यपि प्रस्तावित पाठयचर्या समाज के विभिन्न सांस्कृतिक परिदृश्यों (संदर्भों)पर संवेदनशीलता के साथ विचार करती है तथापि शिक्षा को सामान्य मूल अवयवों के लिए निर्धारण में अपनायी गयी नियामक धारण चकित करने वाली है। उदाहरणार्थ 'सामान्य केन्द्रिक घटक शीर्षक अनुभव में यह स्वीकार किया गया है कि राष्ट्रीयता की भावना से जीवन मूल्यों को सुरक्षित रखना तथा एक ऐसी नैतिकता, आचरण और मूल्यों का विकास करना है जिससे सामान्य भारतीय पहचान को सुदृढ़ किया जा सके। जाहिर है कि इस परिचर्चा दस्तावेज की मूल अन्तर्निहित दृष्टि में उच्च मध्य वर्ग का तथा शहरी हिन्दू युवा है। यह दस्तावेज कहीं भी उन फलितार्थ पर विचार नहीं करता जो शिक्षण में इस प्रकार की मान्यताओंके कारण उत्पन्न होंगे। उदाहरण के लिए यह दस्तावेज उस सांस्कृतिक हिंसा पर दृष्टिपात नहीं करना, जो हाशिए के उन छात्रों को सहनी पड़ेगी, जो उच्च मध्य वर्ग तथा हिन्दू मानसिकता को रेखांकित करने वाले मूल्य, शिक्षा तथा सौंन्दर्य बोध संबंधी पाठों में पढ़ने से उत्पन्न होगी।

वस्तुत: इस दस्तावेज की यह संवेदनहीनता उस दृष्टि का परिणाम है जो हाल के वर्षों में हुए राजनीतिक विकास और समकालीन जीवन प्रेस के प्रभाव की अनदेखी करती है। यदि यह दस्तावेज इन मुद्दों का स्पर्श भी करता है तो केवल रूपरेखा के अंत में राजनीतिक या वैचारिक परिप्रेक्ष्य के रूप में नहीं। जैसे यह दस्तावेज समाज में नारी की स्थिति के प्रति पूरी सजगता दिखाता है तथा अपने प्रथम पृष्ठ पर ही अपने पंचशील सूत्रों में इस तथ्य पर बल देता है कि नयी पाठयचर्या अन्य प्रत्ययों के साथ 'महिला केन्द्रित परिवार' की अवधारणा की प्रश्रय देगी। यह दस्तावेज इस तथ्य की ही उपेक्षा करता है कि महिला आन्दोलन महिला से परिवार के

दायित्वों को कम करने की अनवरत मांग करते रहे हैं। इसके विपरीत यह दस्तावेज परिवार व्यवस्था में महिला की आवश्यकता को इस तरह रेखांकित करता है जिससे महिला को न तो किसी सार्वजनिक मंच पर महत्व मिलता है न उसे पारिवारिक जिम्मेदारियों की अनवरतता से मुक्ति मिलती है। पंचशील में तो यह स्पष्ट प्रस्ताव है कि विद्यालयी शिक्षा नारी को परिवार के प्रति अधिक जबावदेह बनाने पर जोर देगी जबकि शिक्षा का यह प्रमुख कायर्य है कि वह नारी को रुढियों से मुक्त कर प्रजातांत्रिक संभावनाओं के अनुरूप उसके व्यक्तित्व का विकास करे।

इस दस्तावेज की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि यह सामाजिक जीवन की रूढ़ियों से मुक्ति के संकेत तो देता है किंतु अन्ततः यथास्थितिवाद का ही पोषण करता है जैसे नागरिकता का प्रयोग यह दस्तावेज एक अपरिवर्तनीय और अनिश्चित अवधारणा के रूप में करता है । 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अनेक सामाजिक आन्दोलन हुए हैं जिन्होंने नागरिकता 'पहचान' तथा संस्कृति के स्थिर तथा स्थूल स्वरूप के विरुद्ध विद्रोह किया है। आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक मांगों के लिए प्रसूत इन आन्दोलनों के संभागी समूहों की मांगे विविध प्रकार की रही हैं। यह दस्तावेज इन अवधारणाओं के सूक्ष्म विवेचन का कोई प्रयास नहीं करता, इसलिए इन संघर्षों के अनुरूप पाठ्यसामग्री प्रस्तावित करने का भी दस्तावेज में कोई संकेत नहीं है। इस दस्तावेज के प्रणेता भारतीय पहचान की अनन्यता के अस्तित्व के प्रति एक स्थल पर संदेह तो व्यक्त करते हैं किन्तु उसी वाक्य में इस सुझाव पर कि इस मुद्दे पर एक सजग संवीक्षा की आवश्यकता है, आम बहस को ही निरस्त कर देते हैं। प्रस्तावित संवीक्षा स्थगन का अर्थ है मुद्दे को किनारे करने का प्रयास जारी रखना।

किनारे करने का यह तरीका अपने आधारभूत रूप में मानकीकरण के प्रयासों से जुडा है। इसलिए भाषा-अनुभाग मानदण्डों के अनुरूप उच्चारण के मानकीकरण की प्रक्रिया पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।'' किन्तु यह दस्तोज मानदण्डों की राजनीति तथा भाषा में मानकीकरण के सवाल पर पूरी तरह मौन है। वस्तुतः पाठयचर्या की रूपरेखा तैयार करने में प्रणेताओंकी दृष्टि अन्योन्यक्रिया तथा समाकलनात्मकता की अपेक्षा संशोधनात्मक तथा आदर्शीकरण की रही है।

इस दस्तावेज में प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा (घरेलू भाषा) के महत्व का द्वितीय तथा तृतीय भाषा के शिक्षण के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। यह धारणा एक ही भाषा के अन्तर्गत उन विविध बोलियों के अस्तित्व को, जो भाषिक दृष्टि से इतनी भिन्न है कि उन्हें एक ही भाषा का रूप मान लेना ऐतिहासिक घटना मात्र है, संदिग्ध बनाती है । उदाहरणार्थ मेवाडी (राजस्थान की बोली), मैथिली (बिहार की एक बोली) या बुंदेली (उत्तर प्रदेश की एक बोली) को मानक हिन्दी के विभिन्न रूप ही माना जाता है। ऐसे में राजस्थान के देहाती क्षेत्रों के स्कूलों की कक्षाओं में किस घरेलू भाषा का प्रयोग होगा ? मानक हिन्दी या विद्यार्थियों की घरेलू भाषा जो मानक हिन्दी के समान लगती है । ऐसी समस्या का निराकरण पाठयचर्या की सामग्री किस प्रकार कर पायेगी ?

इस दस्तावेज में आदर्श मूल्यांकन की अनेक विधियों का उल्लेख है। किन्तु यह दस्तावेज मूल्यांकन की सैद्धांतिकी का प्रस्तुत किए गये पाठयचर्या की रूपरेखा की प्राथमिकताओं तथा सरोकारों के साथ संबंध स्थापित करने का प्रयास नहीं करता । इस प्रकार मूल्यांकन संबंधी यह अनुभाग किसी शिक्षा प्रतिवेदन का परिशिष्ट मात्र लगता है जबकि इसे बहस के लिए जारी की गयी पाठ्यचर्या की रूपरेखा का अपरिहार्य अंग होना चाहिए।

मूल्यांकन

इस दस्तावेज में आदर्श मूल्यांकन की अनेक विधियों का उल्लेख है। किन्तु यह दस्तावेज मूल्यांकन की सैद्धांतिकी का प्रस्तुत किए गये पाठयचर्या की रूपरेखा की प्राथमिकताओं तथा सरोकारों के साथ संबंध स्थापित करने का प्रयास नहीं करता। इस प्रकार मूल्यांकन संबंधी यह अनुभाग किसी शिक्षा प्रतिवेदन का परिशिष्ट मात्र लगता है जबकि इसे बहस के लिए जारी की गयी पाठ्यचर्या की रूपरेखा का अपरिहार्य अंग होना चाहिए।

यह दस्तावेज वर्तमान मूल्यांकन प्रणाली के दोषों और अन्तर्विरोधों पर उसी प्रकार विलाप करती है जैसे 1985 में प्रस्तुत नयी शिक्षा नीति की रपट आत्मस्वीकात्मक ईमानदारी के साथ करती थी। कतिपय करणीय कदमों का संकेत भर परीक्षा सुधार नामक उपबंध में मिलता है। लेकिन दस्तावेज में यह संकेत कहीं नहीं मिलता कि ये सुधार-विधियां दशकों तक कैसे और क्यों उपेक्षित रहीं तथा अब इन्हें गंभीरतापूर्व कैसे लागू किया जायेगा।

मूल्यांकन से संबद्ध अन्य महत्वपूर्ण मुद्दा प्रोन्नति न रोकने की नीति है जिसे प्रायः सभी राज्यों में लागू कर दिया गया है । यद्यपि यह नीति लागू है तथापि इस तथ्य के पर्याप्त साक्ष्य हैं कि इसे योजनाबद्ध तरीके से लागू नहीं किया गया है। पता चला है कि कुछ राज्यों में प्रोन्नति को विद्यार्थी की 60 प्रतिशत उपस्थिति से जोड़ दिया गया है। इसलिए बहुत से बच्चे बिना बुनियादी अक्षर ज्ञान और

गिनती कौशल के ही उच्च प्राथमिक स्तर तक प्रोन्नत होते चले जाते हैं। उपेक्षा के शिकार बच्चों के बारे में जहां गंभीर तथा सघन शिक्षण की व्यवस्था आवश्यक है, अनुत्तीर्ण होने और प्रोन्नति न रोकने को लेकर एक आधारभूत प्रश्न पूछा जा सकता है। क्या अनुत्तीर्ण होने का दायित्व अकेले बालक पर ही है ? विद्यालयी शिक्षा के आरंभिक वर्षों में ही कुछ छात्र क्यों अनुत्तीर्ण हो जाते हैं, जबकि हम आनन्दप्रद शिक्षण तथा बालकेन्द्रित शिक्षण का संकल्प लेकर चलते हैं। निश्चय ही सारे बच्चों का विकास (गंभीर रूप से विकलांगों को छोड़कर) उनके भौतिक तथा सामाजिक परिवेश में सहज रूप से होता रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि बच्चा पहले से ही जो कुछ जानता है और मूल्यांकन योजना (जो कुछ वह बच्चों के बारे में जानना चाहती है) के बीच एक दरार है।

दरअसल अनुत्तीर्ण होने, निदानात्मक और सुधारात्मक विधियों से सारा विमर्श इस धारणा पर अवलम्बित है कि बच्चों को पूर्व निर्धारित पाठ्यचर्या के मानदण्डों के अनुरूप ढाला जाना है। स्कूलोन्मुख बच्चों के वैविधपूर्ण और निरन्तर परिवर्तित होने वाले सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को देखते हुए यह आवश्यक है कि हम पाठयचर्या के पूर्व निर्धारित मानकों तथा मूल्यांकन प्रणालियों की उपुयक्तता का पुनर्परीक्षण करें।

दरअसल अनुत्तीर्ण होने, निदानात्मक और सुधारात्मक विधियों से सारा विमर्श इस धारणा पर अवलम्बित है कि बच्चों को पूर्व निर्धारित पाठ्यचर्या के मानदण्डों के अनुरूप ढाला जाना है। स्कूलोन्मुख बच्चों के वैविधपूर्ण और निरन्तर परिवर्तित होने वाले सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक परिदृश्य को देखते हुए यह आवश्यक है कि हम पाठ्यचर्या के पूर्व निर्धारित मानकों तथा मूल्यांकन प्रणालियों की उपुयक्तता का पुनर्परीक्षण करें।

यदि पूर्वनिर्धारित पाठयचर्या स्कूल आने से पूर्व बच्चे द्वारा अर्जित ज्ञान सरणी को समझ पाने में सक्षम नहीं है तो अनुत्तीर्ण होने वाले बच्चों की बढ़ती संख्या को रोकने के लिए अपेक्षित निदानात्मक और परिमार्जक तरीकों को अपनाने की आवश्यकता है। ऐसा लगता है कि प्रोन्नति न रोकने को, अनुत्तीर्ण होने तथा विद्यालय छोड़कर चले जाने वाले बच्चों की विवादास्पद समस्या से निपटने के लिए बतौर रणनीति स्वीकार किया गया है।

इस दस्तावेज में एक रेखीय क्रमिक शिक्षण-पठन को अनुपयुक्त मानते हुए निरस्त कर दिया गया है तथापि यह दस्तावेज प्रथम अध्याय में न्यूनतम अधिगम स्तर (एमएलएल) की सैद्धांतिक वैधता का तथा दूसरे अध्याय में पाठयचर्या की रूपरेखा के प्रकल्प में एक रेखीय क्रमिक व्यवस्था का अनुमोदन करता है। इसी के अनुरूप यह दस्तावेज राष्ट्रीय मूल्यांकन सेवा जैसी संस्था द्वारा समान मूल्यांकन व्यवस्था की अनुशंसा करता है।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की शिक्षा

1974 में भारत ने केन्द्र द्वारा प्रायोजित अक्षम बच्चों के लिए समाकलित शिक्षा का प्रस्ताव दिया था। उसके बाद शिक्षा नीति पर जब विमर्श हुआ, तब तब शिक्षा प्रणाली को विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के प्रति जबाबदेह बनाने पर बल दिया गया। जनवरी 1996 में संसद ने विकलांग लोगों के लिए एक्ट 1995 (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण तथा राष्ट्रीय जीवन में पूर्ण सहभागिता) पारित कर दिया। इस एक्ट का पांचवां अध्याय अंधता दृष्टिहीनता, कुष्ठ, बधिरता, पद अपंगता, मंदबुद्धिता, मानसिक रुग्णता से पीडित बच्चों के लिए शिक्षा की व्याख्या करता है। अन्य सुविधाओं के प्रावधान के साथ यह एक्ट यह आदेश देता है कि संबंधित सरकार तथा स्थानीय प्रशासन पाठ्यक्रम तथा मूल्यांकन प्रविधियों को विभिन्न प्रकार की विकलांगताओं से ग्रसित बच्चों की आवश्यकताओं के अनुरूप नियोजित करें । इस पृष्ठभूमि के साथ विकलांग बच्चों की शिक्षा से जुडे सभी वर्गों की आशा के अनुरूप एनसीईआरटी ने विशेष आवश्यकता वाले इन बच्चों के लिए विशेष पाठ्यक्रम तथा उसके लागू करने को लेकर कुछ ठोस सुझाव दिए। दुर्भाग्यवश यह परिचर्चा दस्तावेज विभिन्न दृष्टियों से पूर्णत: निराश करता है वस्तुत: पाठ्यचर्या की चर्चा में 'सशक्त समाज के लिए शिक्षा' का जिक्र न होना तो चकित करने वाला है। उदाहरणार्थ इस दस्तावेज में 'विंकलांग लड़कों और लड़कियों के लिए कार्य-संसार की शिक्षा' के प्रावधान पर जिक्र तक नहीं है विकलांग बच्चों के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम की स्पष्ट योजना के अभाव में इस सुझाव का कोई अर्थ नहीं रह जाता है कि विकलांग बच्चों के लिए व्यक्तिगत शैक्षिक योजनाओं की संरचना उनके माता-पिता के परामर्श से की जानी चाहिये।

विभिन्न प्रकार के विकलांग समूहों के लिए तथा विकलांगता की सीमाओं के अनुसार समूहों के लिए पाठ्यक्रम कैसा होना चाहिए? पाठ्यक्रम में उनके लिए अनुकूल सुधार कौन करे ? विकलांग बच्चों के परिप्रेक्ष्य में उनकी शैक्षिक संस्कृति कैसी होनी चाहिए जैसे बधिर संस्कृति तथा बधिर इतिहास के बारे में हम क्या जानते हैं ? क्या हमारी पाठ्यपुस्तकों में विकलांग लोगों की समस्याओं पर केन्द्रित कहानियां हैं ? जब हमारे पाठ्यक्रम में विकलांगों के जीवन और अनुभवों के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं है तो विकलांग बच्चे के

उपयुक्त विकास की उम्मीद उस पाठ्यक्रम से कैसे की जा सकती है ? सशक्त समाज के लिए शिक्षा की अवधारणा तब तक खोखली है जब तक हम विकलांग बच्चों के प्रश्नों से गंभीरतापूर्वक संयुक्त नहीं होते।

विशेष बच्चों के लिए भाषा पाठ्यक्रम के प्रश्न पर यह दस्तावेज मौन है जबकि सच्चाई यह है कि किसी भी समूह की शिक्षा पर विचार करते समय भाषा का प्रश्न केन्द्रीय प्रश्न होता है। यदि संकेत भाषा को शिक्षा की भाषाओं में एक भाषा के रूप में स्वीकृत कर लिया जाए तो हमें संकेत भाषा दुभाषियों की, संकेत भाषा - कोषों की, संकेत भाषा में पाठ्यसामग्री तैयार करने की आवश्यकता होगी। (इस संकेत भाषा में पाठ्यसामग्री सामान्य बच्चों से भी कम सुनने वाले बच्चों के साथ पढ़ाई जा सकती है क्योंकि यह सिद्ध हो चुका है, कि इस प्रकार के शिक्षण से सामान्य बच्चों का संज्ञानात्मक विकास बहुत होता है।) उनके लिए हमें बधिरों के लिए अलग से शिक्षकों की जरूरत होगी जो इन विद्यालयों में जाकर पढ़ायेंगे जहां टेक्ट टैलीफोन जैसे सुनने की विशेष सुविधाएं तथा ऐसे टेलीविजन, जिन पर अनुशीर्षक दिखते हैं, उपलब्ध करने होंगे।

विभिन्न प्रकार के विकलांग समूहों के लिए तथा विकलांगता की सीमाओं के अनुसार समूहों के लिए पाठ्यक्रम कैसा होना चाहिए? पाठ्यक्रम में उनके लिए अनुकूल सुधार कौन करे ? विकलांग बच्चों के परिप्रेक्ष्य में उनकी शैक्षिक संस्कृति कैसी होनी चाहिए जैसे बधिर संस्कृति तथा बधिर इतिहास के बारे में हम क्या जानते हैं ? क्या हमारी पाठ्यपुस्तकों में विकलांग लोगों की समस्याओं पर केन्द्रित कहानियां हैं ?

क्या हमारे पास साधनों का ही अभाव है जिसके कारण हमारे शैक्षिक योजनाकार समेकित शिक्षा को लागू करने में असमर्थ हैं ? क्या एनसीईआरटी की अकादमिक शाखा शैक्षिक अनुसंधान तथा नवाचार केन्द्र शैक्षिक अनुसंधान के लिए संदर्भित शोध संस्थाओं के साथ, उपयुक्त सूत्र जोड़ पा रही है? ये शोध संस्थाएं इन बिन्दुओं पर इन शैक्षिक योजनाओं की सूचनाएं देती हैं।

1. विभिन्न समुदायों में ग्रामीण तथा शहरी जनसंख्या में विकलांगता की विस्तार दर।
2. विकलांग बच्चों के ऐसे समूहों की पहचान जिन्हें सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा दी जा सकती है तथा जिनके लिए अलग विशेष विद्यालयों की आवशयकता होगी,
3. जिन विद्यालयों में विकलांग बच्चे प्रवेश पाते हैं उनकी अन्त: व्यवस्था।
4. एक सामान्य बच्चों के कक्ष में विकलांग बच्चों को शिक्षित कर सकने वाले शिक्षकों की आवश्यकता।
5. समेकित विद्यालयों में शैक्षिक नेतृत्व की क्षमता से संपन्न शिक्षकों की उपलब्धता।

सारांश

प्रस्तावना में यह उल्लेख है कि दस्तावेज का प्रारूप 'अपरिहार्य परिस्थितियों में तैयार किया गया है' क्योंकि इसे तैयार कराये जाने की जल्दी थी क्योंकि पाठ्यक्रम के चिरअपेक्षित नवीकरण और पाठ्यपुस्तकों के नवसृजन का काम, पिछड़ सकता था।

यह जल्दी कोई आकस्मिक घटना नहीं है क्योंकि हर सरकार यह चाहती है कि अपने राजनैतिक ऐजेन्डे को लागू करने के लिए वह सबसे पहले शिक्षा नीतियों को अपने अनुरूप बदले। इसलिए इस राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा का अनिवार्य विवेचन और भी जल्दी होना चाहिए। यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि एनसीईआरटी ने यह दस्तावेज विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत अनेक समूहों की मदद से तैयार किया है। (ये समूह हैं - पाठ्यपुस्तक लेखक, प्रकाशक, माता-पिता, शिक्षक तथा शोधार्थी) तथापि इस प्रक्रिया में जो पाठ्यक्रम आकार ग्रहण करता है, वह बच्चे को सार्थक जीवन जीने की कला तथा अपने चारों ओर के जीवन को रचनात्मक रूप से समृद्ध बनाने की क्षमता देने के बजाए एक मशीनी अनुशासन साधना मात्र सिखाता है। भारत जन विज्ञान जत्था, एकलव्य योजना या लोकजुम्बिश जैसी संस्थाएं शिक्षा की एक वैकल्पिक दृष्टि प्रस्तुत करने का कार्य कर रही है। शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत किसी भी व्यक्ति की यह जिज्ञासा हो सकती है कि इस दस्तावेज में उक्त संस्थाओं के प्रयासों का क्या उल्लेख है। शायद यह इस बात का संकेत है कि प्रजातंत्र और इतिहास के सरोकारों को लेकर असहमतियां रखने वाले शिक्षाविदों की राय एनसीईआरटी के इस दस्तावेज के लिए गैर जरूरी है।◆